7 B A I (Hons)

Topic - Vedanta theory of illusion (अनिर्वचनीय ख्यातिवाद)

Q:- Explain clearly the Vedanta theory of illusion.

Ans:- भारतीय दर्शन में भ्रम-विचार का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि प्रायः सभी नास्तिक तथा आस्तिक दर्शनों में भ्रम के स्वरूप और कारण की गहरी छानबीन हुई है। यद्यपि सभी दर्शनों के भ्रम-विषयक सिद्धान्तों की अपनी विशिष्टता है, तथापि प्रायः सभी मानते हैं कि भ्रम आत्मा का एक रूप है और इसमें वस्तु का अयथार्थ ज्ञान होता है। भ्रम की स्थिति में वस्तुओं को उन गुणों से युक्त अनुभव किया जाता है जो गुण वास्तव में उसमें नहीं होते हैं, बल्कि वे गुण तो अन्यत्र होते हैं। रात के अँधेरे में रस्सी को सर्प समझना भ्रम का एक प्रचलित उदाहरण है।

अद्वैत वेदान्त का भ्रम-सिद्धान्त 'अनिर्वचनीय ख्यातिवाद' कहलाता है। इसके अनुसार भ्रम में जो पदार्थ दिखाई देता है उसे न सत् कहा जा सकता है और न असत् ही कहना संभव है बल्कि वह तो अनिर्वचनीय होता है। रज्जू-सर्प को हम सत् नहीं कह सकते क्योंकि इसका निषेध होता है, बाधित होता है। यह असत् भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह दिखाई पड़ता है, इसका अनुभव होता है। इसे सत् तथा असत् दोनों नहीं कहा जा सकता क्योंकि ऐसा कहना विरोधाभास ही होगा। अतः रज्जू-सर्प को सत्-असत् से विलक्षण अनिर्वचनीय कहना प्रमाणसंगत है।

पुनः शंकर की मान्यता है कि यह संसार भी एक भ्रम है जिसका कारण अज्ञान है। अज्ञान के फलस्वरूप आवरण और विक्षेप होता है। ब्रह्म के स्वरूप पर आवरण पड़ने के कारण उसका यथार्थ रूप आच्छादित हो जाता है और उसके स्थान पर जगत् की प्रतीति होती है। प्रश्न उठता है कि यदि वास्तविक जगत् का पहले कभी प्रत्यक्ष नहीं हुआ तो फिर इस वर्तमान जगत् की प्रतीति कैसे हो सकती है? शंकर का उत्तर है कि सृष्टि का प्रवाह अनादि है और इस संसार के पहले असंख्य संसार हो चुके हैं। उनके संस्कार जीवों में रह जाते हैं। अज्ञान के कारण हम पूर्वजन्मों में अनुभूत नाना विषयों का कुछ सत्ता ब्रह्म में आरोप करते हैं। वस्तुतः शंकराचार्य भ्रम की व्याख्या 'अध्यास' द्वारा करते हैं।

Scanned with CamScanner

जो वस्तु जहाँ नहीं है, उसका वहाँ आरोपण अध्यास कहा जाता है।
दूसरे शब्दों में, पूर्ववर्ती अनुभव का परवर्ती आधार में अवभासित
होना अध्यास है। प्रत्येक भ्रम में सद् विषय के स्थान पर
विपर्यास्त प्रकट होता रहता है। जिसकी अभी वास्तविक सत्ता
नहीं है, वह भी सद् के रूप में प्रकट हो सकता है,
अयथार्थ वस्तु भी यथार्थ रूप में प्रकट हो सकती है। यही
वेदान्त का भ्रम-विषयक सिद्धान्त है।

अद्वैत वेदान्त के भ्रम-सिद्धान्त को
भलीभाँति समझने के लिए भारतीय दर्शन के अन्य
भ्रम-विषयक मतों से तुलना करना आवश्यक है क्योंकि
अद्वैत वेदान्तियों ने स्वयं मीमांसा, न्याय-वैशेषिक आदि
मतों का खण्डन किया है। मीमांसक तो प्रत्यक्ष में भ्रम की
संभावना मानते ही नहीं हैं। उनके अनुसार सभी ज्ञान
अभ्रान्त है, कहीं भ्रम नहीं है। जिसे हम भ्रम कहते
हैं, वह दो यथार्थ ज्ञानों का मिश्रण है। वह प्रत्यक्ष
तथा स्मृतिज्ञान का सम्मिश्रण है और इन दोनों के
भेद ज्ञान का अभाव (भेदाग्रह) है। इसके विरुद्ध अद्वैत
-वादियों का तर्क है कि यहाँ केवल भेदज्ञान का अभाव
मात्र नहीं है, परन्तु प्रत्यक्ष और स्मृति पदार्थों की
एकता भी है। यदि केवल तादात्म्य ज्ञान अर्थात
यह विश्वास कि 'यह वस्तु साँप है' नहीं रहता तो हम
उस वस्तु से डरकर भागते नहीं। अतएव प्रत्यक्ष
भ्रम को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।

पुनः अद्वैत-वेदान्त न्याय-वैशेषिक
के भ्रम-विचार का खण्डन करता है। न्याय-वैशेषिक
के अनुसार प्रत्यक्ष ज्ञान में भ्रम हो सकता है। इसमें
स्मृति का संस्कार इतना प्रबल हो उठता है कि वह प्रत्यक्ष
की तरह प्रतीत होता है। पूर्व में अनुभूत सर्प के
सदृश रस्सी को देखकर उस सर्प के स्मृति-संस्कार
हमें बाध्य करता है कि रस्सी को सर्प के रूप में जाना
जाए। अतः पूर्वकाल में प्रत्यक्ष वस्तु के संस्कार
द्वारा वर्तमानकालिक ज्ञान की उत्पत्ति होती है। जिस
सत् पदार्थ का पहले प्रत्यक्ष हुआ था, उसी की
प्रतीति भ्रम में हो सकती है। अद्वैत-वेदान्त का
आक्षेप है कि भ्रमात्मक विषय में जो वर्तमानकालिक

और साक्षात् प्रतीति का भाव रहता है, उसकी उत्पत्ति नहीं होती। यह भी नहीं कहा जा सकता कि स्मृति-ज्ञान प्रत्यक्ष के वास्तविक विषय को अपने देश-काल से अलग हटा देता है। किसी भी अवस्था में यह तो मानना ही पड़ेगा कि जो यहाँ और अभी वस्तुतः सत् नहीं है (साँप), वह सत् के रूप में आभासित होता है, क्योंकि हमें वर्तमान वस्तु (रस्सी) का अज्ञान है। अद्वैतवादियों का निष्कर्ष है कि अज्ञान के कारण वास्तविक विषय के स्वरूप पर आवरण पड़ जाता है और वहाँ विषयान्तर की प्रतीति होती है जिसे भ्रम कहते हैं।

अद्वैतवाद के भ्रम विषयक विचार बौद्धमत के शून्यवाद या विज्ञानवाद से भिन्न है। शून्यवादी कहता है कि शून्य अर्थात् जो बिल्कुल असत् है, ही जगत् के रूप में दिखाई पड़ता है। विज्ञानवादी कहता है कि मानसिक विज्ञान या प्रत्यक्ष ही जगत् के रूप में दिखाई देता है। शंकर तथा उनके अनुयायी मानते हैं कि प्रत्येक विषय का आधार शुद्ध सत्ता है और और यह आधार न तो शून्य है और न विज्ञानमात्र ही) उनके अनुसार ब्रह्म ही जगत् के रूप में प्रकट होता है तथा सत् ही जगत् के रूप में दिखाई देता है। अद्वैतवादी व्यावहारिक जगत् और प्रातिभासिक विषय रस्सी में सर्प का आभास दोनों को अविद्या द्वारा उत्पन्न बाह्य विषय मानते हैं। जिस मूल अविद्या के कारण व्यावहारिक जगत् का प्रत्यक्ष अनुभव होता है, वह 'मूलाविद्या' कहलाती है तथा जिस अविद्या के कारण रस्सी में सर्प का तात्कालिक भ्रम उत्पन्न होता है, यह 'तूलाविद्या' कहलाती है। स्पष्ट है कि भ्रम-संबंधी मत में अद्वैतवादी वस्तुवादियों से भी बढ़े-चढ़े हैं।

समालोचना:-

यह आपत्ति की जा सकती है कि शंकर के भ्रम-सिद्धान्त में जगत् की समस्या का समाधान नहीं हो पाता। दर्शन का काम है कि जगत् का कारण बतलाया जाए, उसकी समुचित व्याख्या की जाए। किन्तु अद्वैत वेदान्त यदि जगत् की सत्ता नहीं

मानेगा तो वह किस आधार पर टिकेगा? किन्तु इस तरह की आलोचना कुछ छिछली-सी प्रतीत होती है। शंकर तथा उनके अनुयायियों का सिर्फ इतना ही कहना है कि सभी प्रतीतियाँ एक समान विश्वसनीय नहीं हैं, जो संसार देखने में आता है, वह पूर्ण सत्य नहीं है। कुछ विश्वास और अनुभव ऐसे हैं, जिनका भविष्य अनुभव से विरोध पड़ने की संभावना है। अतएव दर्शनशास्त्र का काम है कि एक विश्वास तथा दूसरे विश्वास में, एक अनुभव तथा दूसरे अनुभव में विभेद का सत्यभेद का उचित स्थान निर्धारित करे। स्वप्न या भ्रम में विषय क्षणभर के लिए उपस्थित होते हैं और उनका निषेध जाग्रत अवस्था से हो जाता है। वे विषय जो जाग्रत अवस्था में प्रकट होते हैं, पर विरोधी होने के कारण सम्पूर्ण सत्य नहीं होते, उनका भी निषेध हो जाता है। शुद्ध सत्ता जो सभी प्रतीतियों में प्रकट होती है, पर जो न बाधित होती है और न जिसके बाधित होने की कल्पना की जा सकती है। इसी यौक्तिक आधार पर शंकर सामान्य अनुभवों का प्रकार-भेद और स्थान-निरूपण करते हैं और कहते हैं कि व्यावहारिक दृष्टि से जगत् आवश्य ही सत्य है। जैसे कारणरूपी ब्रह्म की सत्ता त्रिकाल में रहती है, वैसे ही सत्तारूपेण जगत् भी त्रिकाल में सत्य नहीं होती है, क्योंकि कारण-कार्य अभिन्न है। पुनः नानारूपात्मक विषय सत्तारूपेण सत्य है, पर अपने विशेष रूप में असत् है।

इसके अलावा कहा जा सकता है कि रज्जू-सर्प व्यक्तिगत भ्रम है, जबकि जगत् सामान्य भ्रम है। रज्जु सर्प का निषेध वस्तु-विशेष के ज्ञान के बाद होता है, पर जगत् की व्यावहारिकता का निषेध ब्रह्म ज्ञान से ही संभव हो पाता है। शंकर के अनुसार भ्रम को ~~विवेक~~ सत् असत् से विलक्षण अनिर्वचनीय कहना युक्तियुक्त है। परन्तु व्यवहार में प्रायः हमलोग सत् और असत् का ही प्रयोग करते हैं। इसके परे अनिर्वचनीय शब्द का प्रयोग भ्रामक है। इसे दूसरे रूप में भी रखा जा सकता है। एक ओर शंकराचार्य ने भ्रम को अनिर्वचनीय कहा है तथा दूसरी ओर

इसे परिमार्जित भी किया है। दोनों का तालमेल करना संभवतः कठिन है।

Conclusion :-

यह सत्य है कि जो लोग सांसारिक नामगुणों के विषय में अपनी अधूरी धारणाओं की पुष्टि के लिए दर्शन का मुँह जोहते हैं, उन्हें वेदान्त से निराश होना पड़ेगा। बौद्ध और जैन दर्शनों की भाँति ईश्वर का अद्वैतवादी भ्रम विचार उन प्रौढ़ विचारवालों के लिए है जो दृढ़तापूर्वक युक्ति-मार्ग का अवलम्बन करते हैं, चाहे वह जिस परिणाम पर ले जाए। ऐसे इने-गिने साहसी लोगों के लिए ही वेदान्त का दर्शन है जो सामान्य अनुभव को उलट देता है और व्यावहारिक मूल्यों को तुच्छ बनाता है। इसके बावजूद अद्वैतवेदान्त का अपना एक खास आकर्षण है। जरूरत है कि हम अपनी आत्मिक शक्ति को विकसित तथा वेदान्त के उपदेशों एवं विचारों को सही परिप्रेक्ष्य में समझें।